दलित साहित्य का सामाजिक सरोकार, एक अध्ययन

अभिलाष कुमार गोंड*

''उठो कि अपने अंधेरे के खिलाफ उठो
उठो अपने पीछे चल रही
साजिश के खिलाफ
उठो कि जहां हो वहां से उठो
जैसे तूफान से बवंडर उठता है
उठती है जैसे राख में दबी चिंगारी
देखो ! अपनी बस्ती के सीमांत पर
जहां धराशाई हो रहे है पेड़
कुलहाड़ियों के सामने असहाय
रोज रंगी होती बस्तियां
एक रोज मांगेगी तुमसे
तुम्हारी खामोशी का जवाब।''– निर्मला पुनुल

'दलित साहित्य' का प्रवाह मात्र मराठी में ही नहीं बल्कि भारतीय स्तर पर स्थापित हो चुका है। भारतीय और वैश्विक स्तर पर दलितों की अभिव्यक्ति की चर्चा हो रही है और विश्व के शोषितों के साहित्य के रूप में दलित साहित्य की ओर देखा जा रहा है। मराठी साहित्य से दलित साहित्य की व्यापक शुरूआत मानी जा सकती है। इस कारण महाराष्ट्र के मूल 'दलित साहित्य' को अब 'मराठी दलित साहित्य' जैसा विशेषण लगाया जाता है। इसके अलावा हर राज्य का अपना एक अलग दलित साहित्य मराठी दलित साहित्य को देखकर उभर रहा है जिसमें गुजराती दलित साहित्य, तमिल दलित साहित्य, हिन्दी दलित साहित्य, कन्नड़ दलित साहित्य जैसे नाम प्रमुख हैं। भारत के दलितों को लिखने की प्रेरणा मराठी दलित साहित्य से मिली जिसके माध्यम से दलितों ने अपनी आपबीती आत्मकथा के रूप में लिखा। भारत के अन्य राज्यों के दलितों को इससे व्यापक प्रेरणा मिली और दलित साहित्य को आदर्श मानकर वे अपना कार्य करने लगे।

***शोध छात्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी।**

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में वर्ण और जाति की जो वास्तविकता है, वही सबसे बड़ी समस्या है। मार्क्सवाद के अनुसार जब समाजवाद आयेगा तब जाति, वर्ग और धर्म की समस्याएँ हल होंगी। मार्क्सवाद परिवर्तन की चाह रखता है। वह चाहता है जो सर्वहारा वर्ग है वह उन बेड़ियों को तोड़े, जिनमें वह अनेक सालों से जकड़ लिया गया था और इस तरह वे उन्हें जागरूक बनाना चाहते हैं। जहाँ मार्क्सवाद ने मानव गरिमा और मानव अधिकार को स्थापित करने के लिए पूरी मानवजाति के इतिहास का अध्ययन एवं मूल्यांकन किया। वही शोषण को जड़ से मुक्त करने के लिए वैज्ञानिक सोच प्रदान की। मार्क्सवादी मानते हैं कि, वर्गहीन समाज और शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए मार्क्स क्रांति और संघर्ष आवश्यक है। उनका मानना है कि वर्ग संघर्ष ही शोषण से मुक्त होने वाला क्रांतिकारी हथियार है। मार्क्सवाद सर्वहारा वर्ग की शिक्षा पर जोर डालता है।

"Marxs found in art of powerful weapon to educate the masses."[1]

आजादी के पहले जहाँ दलितों की दशा अत्यन्त दयनीय थी, वहीं आज भी उनकी दशा में बहुत अधिक सुधार नहीं हुआ है। बाबा साहब देश को अंग्रेजी शासन से मुक्त कराना नहीं चाहते थे बल्कि उन करोड़ों दलितों, अछूतों, आदिवासियों, बहिष्कृत व्यक्तियों को भी पूर्ण स्वतंत्र देखना चाहते थे जो अपनी जाति के नाम पर दोहरी गुलामी की जिन्दगी जी रहे थे। उनके अनुसार राष्ट्रवाद का तात्पर्य था कि देश के समस्त व्यक्तियों में एकता का मजबूत गठबन्धन रहना चाहिए। वे जात–पात, धर्म की रणनीतियों को, रंग के आधार पर भेद करने की प्रणाली को समाज से हटाना चाहते थे। क्योंकि उनके चिंतन का आधार मानवतावादी था। सामाजिक लोकतंत्र अम्बेडकर का मूलभूत सिद्धान्त था। क्योंकि उनकी न तो धर्म में आस्था थी और न ही पूजा–पाठ में ही विश्वास रखते थे। राकेश प्रियदर्शी की कविता ''डॉ0 भीमराव को समर्पित'' में इसे देख सकते हैं–

''मैं भाग्य को नहीं मानता
और न विधाता को,
ईश्वर को नहीं मानता मैं
न जाने क्यों,
किसी भी धर्म पर आस्था नहीं है मुझे
पूजा–पाठ से चिढ़ता हूँ मैं
कौन है वह जिसने मुझे नयी जिन्दगी दी
वह हर जगह है
दलित रग–रग में।''[2]

क्योंकि अम्बेडकर जानते थे कि समाजवाद का विकास तभी होगा जब समाज में सभी व्यक्ति को एक समान अधिकार प्राप्त होंगे। उन्हें भी उस कुएँ से जल लेने की अनुमति मिले जिसके जल को भरने का अधिकार केवल उच्च जाति के लोगों के पास था। उन्हें भी मंदिर में प्रवेश का अधिकार मिले। उन्हें भी वो सब अधिकार मिले जो एक ब्राह्मण को समाज में मिला है। अगर कोई दलित उनकी इच्छा के अनुसार काम करने से इंकार करता था तो उसे अनेक प्रकार से कठिन प्रताड़ना दी जाती थी और उसी समाज में दलित स्त्री का उससे भी ज्यादा बुरे तरीके से शोषण किया जाता था। समाज में जब दलितों के ऊपर यह अत्याचार बहुत ज्यादा भयावह रूप लेने लगा, तब समाज में व्याप्त दलित समाज में जो असंतुष्टि थी वह विद्रोह करने के लिए तैयार होने लगी। बस उसके लिए केवल मशाल दिखाने की आवश्यकता थी। क्योंकि वे असंतुष्ट तो थे लेकिन उनमें आत्मविश्वास न होने के कारण, पढ़ा–लिखा न होने के कारण ओर अपने असंतोष को ठीक ढंग से न समझ पाने के कारण वे लगातार ही शोषण का शिकार हो रहे थे, पर वे असहाय थे। उन्हें आवश्यकता थी एक सहारे की, जिसे ज्योतिबा फूले, सावित्री बाई फूले, बाबा साहब, अछूतानंद जी जैसे लोगों ने पूरा किया। जिनके प्रयास ने उन्हें अपने अधिकार के लिए, अपने अस्तित्व की सार्थकता को समझने में सहायता मिली।

इसके साथ ही बहुत से लोगों ने कलम के माध्यम से दलितों के ऊपर हो रहे अत्याचार को समाज के सामने लाने का प्रयास किया। ताकि समाज के अनभिज्ञ लोग जो उनकी दयनीय स्थिति से अवगत नहीं थे, उनकी उस स्थिति को जान सके। विमल थोरात का मानना है ''दलित साहित्य उस विद्रोह का उन्मेष है जो किसी विशिष्ट जाति या व्यक्ति के विरूद्ध नहीं बल्कि 'स्व' की खोज में निकले हुए एक पूरे समाज का पूर्व परम्पराओं से विद्रोह है एवं अपने अस्तित्व की स्थापना का प्रयास है।''[3]

गाँव की रणनीतियों के बारे में बहुत से चिन्तकों ने लिखा है। गाँव यानि कि जाति–पाति की जटिलताओं से जकड़ा हुआ वह स्थान जहाँ जाति के बंधन इतने कड़े होते हैं कि एक सामान्य निम्नवर्गीय दलित परिवार का जीना असम्भव सा लगता है। हर गाँव में एक ऐसी बस्ती होती है, जिसे लोग गँवई भाषा में 'चमरटोला' कहते हैं वहाँ जाना तो दूर उन्हें देखना तक पसंद नहीं करते। गाँव में जो पंचायत–राज के लुभावने और आकर्षण सब्जबाग दलितों के लिए षड्यन्त्र बनकर उपस्थित होते हैं। अम्बेडकर ने गाँव को जाति भेद के कारखाने के रूप में देखा है। दलित रचनाओं के माध्यम से दलित लेखकों और कवियों ने पंचायती राज का नग्न यथार्थ प्रस्तुत किया है। अपने भोगे हुए यथार्थ को उनसे अच्छा कौन अभिव्यक्ति दे सकता है।

संकीर्ण पतली गलियों में
कुनमुनाती गन्दी से
टखनों तक सने पाँव से
सुना है
दहाड़ती आवाजों का
किसी चीख की मानिन्द। (सदियों का संताप)

दलित साहित्य की मुख्य संवेदना समकालीन दलित साहित्य के माध्यम से मुखर होती है, जब दलित रचनाकार अपनी आप बीती, अपनी यातनाओं, अपने दुःख को समाज के सामने रखता है। इससे पहले जब कविता कहानी और उपन्यास लिखा तब उनकी अभिव्यक्ति छिछली थी। परन्तु उन्होंने अपनी आत्मकथा के साथ इस कमी को दूर किया।

ओम प्रकाश बाल्मिकी ने 'जूठन' आत्मकथा के माध्यम से हिन्दी में यदि दलित आत्मकथा विधा को प्रतिष्ठा दिलाई है और उसे मराठी दलित आत्मकथाओं के समकक्ष ला खड़ा किया है तो वहीं एक कवि के रूप में भी उन्होंने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। 1997 में प्रकाशित 'बस्स ! बहुत हो चुका' की लगभग पचास कविताएँ उनके प्रखर व परिपक्व विकास की गवाही देने वाली कविताएँ हैं।

चूहड़े या डोम की आत्मा
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है
मैं नहीं जानता
शायद आप जानते हैं !

आदि हिन्दू आन्दोलन ने दलित आन्दोलन को एक शक्ति प्रदान की, तो वहीं अछूतानन्द ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलित और वंचित समाज को शक्ति प्रदान करने का प्रयास किया। जिसके परिणामस्वरूप दलितों ने अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठानी शुरू की।

जुल्म मत सहो नेक मरदो, जाति पहचान कुर्बान कर दो।
है द्विजों ने अब तक दबाया,
ऐसी हालत में हमको गिराया।
जानवर से भी बदतर बनाया, गर्क उनके यह अभिमान कर दो
दाद बेगार हमसे कराते।
है मना धी मी खाना सुनाते।
वर वधू डोला न चढ़ते पाते।
औरतों को न जेबर पहनाते।

जुल्म ये सारा सूनसान कर दो।।[4]

इस कविता में आदि हिन्दू आन्दोलन का तेवर मौजूद दिखाई देता है। परन्तु हम इसमें दलित जाति को एक शोषित वर्ग के रूप में देखते हैं। जुल्म के खिलाफ उन्हें आवाज भी उठाना चाहिए था। जुल्म के खिलाफ आवाज दलित कविता के आधार के रूप में हमें दिखाई पड़ती है। कहना न होगा कि इस काल में दलित वर्गों में एक पृथक जातीय राष्ट्रवाद की खतरनाक धारणा विकसित की जा रही थी। इस श्रेष्ठवाद की भावना का सूत्रपात आर्यों से होता है और आर्य समाज ही इस जातीय श्रेष्ठवाद को धोखे से मिथ्याभिमान के काल्पनिक इतिहास में उलझा रहा था। सफाई करने वाला मेहतर जिसे वाल्मीकि ऋषि से जोड़कर बाल्मिकी कह दिया गया यह भी आर्य समाजियों की ही देन है। जिसके माध्यम से धीरे–धीरे उनका हिन्दूकरण किया जाने लगा।

दलित देखा निगाह पसार कैसी बिगरी है दशा तुम्हारी।
जब हो शादी का संबंध, काम सब घर पर देउ बन्द।
जायकर पूछा भइया बन्द, ब्याह में कैसी सलाह तुम्हारी।।[5]

भारत में एक विद्रोह के रूप में मार्क्सवादी विचारधारा को साथ लेकर प्रगतिवाद का उदय हिन्दी साहित्य में होता है। भारतीय प्रगतिवाद समाजेतिहास के विकास से संबंध स्वामी अछूतानन्द हरिहर ने 1912 से 1922 तक आदि हिन्दू आन्दोलन चलाया जिसमें उन्होंने जाति–सुधार का कार्य किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने मुख्य रूप से सात बातों पर जोर दिया– (1) शिक्षा (2) गन्दे पेशों का त्याग (3) मृतक पशुओं के सड़े मांस को खाने से रोकना (4) बेगार के विरूद्ध संघर्ष (5) सत बसना का परित्याग– यह एक ऐसी प्रथा थी जिनमें दाई का काम करने वाली चमार महिला को सात दिन तक सवर्ण जच्चा के घर में रहकर साफ–सफाई करनी होती थी, (6) नशा त्याग और (7) पाखण्ड, अंधविश्वास का खात्मा। अछूतानंद ने अपने व्यापक अध्ययन के बाद इस तर्क पर पहुँचे कि अछूत अनार्य हैं, वे आज के हिन्दू नहीं हैं, बल्कि वे इस देश के मूल निवासी हैं, जो आर्यों के आगमन से पहले मौजूद थे। अतः स्पष्ट है आर्यों ने इन्हें अछूत और गुलाम बनाकर रखा। इन्हें छूने से अपवित्रता लग जाती है। इन्हें गन्दे और कठोर काम करने के लिए बाध्य किया जाता था और आज भी वे इस प्रकार के जघन्य कार्य करने के लिए बाध्य हैं। उन्हें उन सारे अधिकारों से वंचित कर दिया जाता था जो अधिकार उन्हें मिलने चाहिए थे। इसलिए उन्होंने सभा में उपस्थित दलितों को कहा कि, ''हमें ब्रिटिश सरकार के साथ विद्रोह नहीं करना चाहिए और इंग्लैण्ड की सरकार से अपने राजनैतिक अधिकारों की मांग करनी चाहिए।''[6]

स्वामी अछूतानन्द के नेतृत्व में पहली बार 1923 ई0 में आदि हिन्दू आन्दोलन राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित किया गया, जिसकी अध्यक्षता स्वामी जी ने की।

इस आन्दोलन में अनेक दलितों ने अपने विशाल हुजूम के साथ हिस्सा लिया। इस आन्दोलन में स्वामीजी का भाषण अत्यन्त प्रभावशाली था, जिसने दलित जाति के दबे, सताए हुए, शोषित लोगों की बुद्धि जो अब तक सोई हुई थी, उसे झकझोर कर रख दिया। वे अब अपने अधिकारों के समझने लगे जो अधिकार उन्हें कभी मिला ही नहीं था। वे समझने लगे कि वे भी हाड़–मांस वाले हिंदू जाति के लोगों के समान ही एक मनुष्य है। उनके खोखले शरीर में एक नई स्फूर्ति होने लगी। अब उनमें एक नया उन्माद सा उठा। वे अब गंदे काम करने से इंकार करने लगे, मरे पशुओं को खाना बंद कर दिया। वे अब नहीं चाहते थे कि उनकी आने वाली पीढ़ी भी इस प्रकार शोषण का शिकार हो, इस भारी परिवर्तन के कारण हिन्दूओं में हड़कम्प मच गया। उस समय अछूतानंद दलित, अछूतों में अपने ऊपर विश्वास रखकर इसी तरह निरन्तर आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा दे रहे थे। उन्होंने मार्क्स के शब्दों को सामने रखा, ''तुम सर्वहारा हो, तुम्हारे पास खोने के लिये कुछ भी नहीं है, पर पाने के लिये अनन्त आकाश है। यदि तुमने हिम्मत नहीं हारी और परिवर्तन की दिशा में बढ़ते रहे, तो न सिर्फ तुम्हारी विजय होगी, बल्कि तुम्हें वह आजादी मिलेगी कि तुम्हारी अगली पीढ़ियां भी आजाद ही पैदा होगी।''[7]

'बस्स बहुत हो चुका' में इस शोषण के खिलाफ आवाज उठाते है। वे हिन्दूत्वाद के अस्तित्व को अस्वीकार करते हुए, हो रहे शोषण के खिलाफ प्रश्न खड़े करते हैं–

''चूहड़े या डोम की आत्मा
ब्रह्मम का अंश क्यों नहीं है
मैं नहीं जानता
शायद आप जानते हों।''[8]

अनेक दलित लेखकों ने अपने असंतोष को व्यक्त करने के लिए कलम उठा लिया। वे अपनी लेखनी के माध्यम से इस दमनकारी निर्मम व्यवस्था, जो दलित जनता के इस दयनीय स्थिति का कारण थी उस पर कलम को तलवार बनाकर वार करने लगे। क्योंकि ऐसी व्यवस्था ही उनकी बेरोजगारी, उनके भूख, उनकी गरीबी का कारण थी, जो उन्हें उस स्थिति से ऊपर उठने नहीं दे रही थी। जयप्रकाश कर्दम ने इस व्यवस्था से आहत होकर लिखा है–

''करोड़ो दलित वंचित है
सदियों से
बहुत सारे मानवाधिकारों से

सदियों से वे हमसे
गाली की भाषा में बोलते रहे हैं
यह उनकी संस्कृति है
कितना विकट होता है
भूख के गणित से
जाति का व्याकरण।''[9]

अतः एक दिन ऐसा आता है जब वे (दलित जाति) इस वर्ण व्यवस्था के खिलाफ अपने अंदर असंतोष से भर उठते हैं। वे शिक्षा के महत्व को समझने लगते हैं। वे इस वर्णभेद नाम की क्रूर व्यवस्था को देश से उखाड़ फेंकना चाहते हैं तथा अनेक दलितों ने अपने जीवन को इस आन्दोलन के लिए मृत्यु के हवाले कर दिया। दलित लेखकों ने व्यवस्था के खिलाफ अपने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। बाल्मिकी इस जाति भेद की व्यवस्था से आहत होकर पूछत है–

''वह दिन कब आएगा
जब बामनी नहीं जनेगी बामन
चमारी नहीं जनेगी चमार
भंगिन भी नहीं जनेगी भंगी।''[10]

देश में शोषण की इस काली दैत्य के समान दिखने वाली व्यवस्था को देखकर ऐसा लगता है कि समाज से वर्णभेद और वर्गभेद मिट जाए। इंसान केवल इंसान पैदा करेंगे। वे समाज में ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र पैदा नहीं करेंगे। यह शोषण का कार्य उस समय अपने चरम पर था जब देश को आजादी नहीं मिली थी। स्थिति में सुधार तो हुआ उन्हें आरक्षण भी मिला है, जिससे उनकी दशा को सुधारा जा सके। उनके उद्धार के लिए, उन्हें उस स्थिति से ऊपर उबारने के लिए अनेक कदम उठाए गए। संविधान की धारा के अन्तर्गत उनके लिए, उनके हित में अनेक नियम कानून बनाए गए। जिनमें संविधान की धारा– 312, 330 और 334 में लोकसभा और राज्य की विधान सभा में दलितों लिए स्थान आरक्षित किया गया है। न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत दलितों के हित में जो कार्य किए गए उसमें दलितों के ऊपर होने वाले अत्याचार जैसे हत्या, बलात्कार आदि को रोकने के लिए संविधान में अधिनियम लागू किया गया। इसके लिए दण्ड संहिता का प्रावधान रखा गया। उन्हें अध्ययन के क्षेत्र में निम्न से लेकर उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए, नौकरी प्राप्त करने के लिए आरक्षण प्रदान किए गए ताकि उनकी भी स्थिति सामान्य जाति के लोगों के समान हो सके। दलितों के लिए आरक्षण का प्रावधान था कि उन्हें समाज के मुख्य धारा में शामिल किया जा सके लेकिन इसके बावजूद भी आज भी उनकी हालत वैसी ही है। आज भी जाति–पाति का भेद उच्च वर्गों

में विद्यमान है। आज उनमें आक्रोश का ढंग दूसरा है। आज बात की जाती है एकता की, विश्वबंधुत्व की, इनका विकास तभी हो सकता है जब सम्पूर्ण भारत के लोग एक साथ, मिलजुल कर कार्य करें वरना कुछ कल्पनाएं आदर्श रूप में इसी समाज में मौजूद रहेंगी जो स्वर्णिम भारत के इंतजार में इसी तरह रह गयी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. परम्परागत वर्ण–व्यवस्था और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2009, पृ0 75
2. वही, पृ0 101
3. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओम प्रकाश बाल्मिकी, राधाकृष्ण, पहला छात्र संस्करण : 2014, दिल्ली, पृ0 64–65
4. दलित साहित्य वार्षिकी, जयप्रकाश कर्दम, शब्द संयजन, दिल्ली, 2005, पृ0 20
5. वही, पृ0 22
6. स्वामी अछूतानंद 'हरिहर संचयिता', महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण–2011, नई दिल्ली, पृ0 24
7. स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' संचयिता, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, पहला संस्करण 2011, नयी दिल्ली, पृ0 45
8. दलित साहित्य एक मूल्यांकन, राजपाल, संस्करण : 2009, दिल्ली, पृ0 69
9. परम्परागत वर्णव्यवस्था और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2009, नयी दिल्ली, पृ0 54
10. दलित साहित्य : एक मूल्यांकन, राजपाल, संस्करण : 2009, दिल्ली, पृ0 71